RUSSIA WORKSHOP – JULY 2019
Kabīr session 3: themes & metaphors
ṬĪKĀS

We provide ṭīkās for each poem where available (2 or 1 or none) from these 2 sources:

1. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह, कबीर वाङ्मय: खण्ड २, सबद: भावार्थबोधिनी व्याख्या सहित। विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारानसी १९८१
2. माताप्रसाद गुप्त (संपादक), कबीर-ग्रंथावली । प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा १९६९.

Note: Often there are variations (usually but not always minor) between the texts these authors use and those in our ms. And we don't always agree with their interpretations. But overall their ṭīkās are very helpful to us.

Drunk!

J17 - S17#22

जयदेव सिंह, पृ० १३५–१३६

शब्दार्थ — छाकि पर्‌यो = तृप्त हो गया । कसाव = कसैलापन । पाटन = छत । मैं (फा०) = शराब । फाबी = अच्छा लगा । खुमारी (अ०) = नशा ।

संदर्भ — इस पद में भक्ति-रस के आनंद का वर्णन किया गया है ।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि प्रभु का भक्ति-रस पीकर आत्मा तृप्त हो गया है । वह राम-रस पीते हुए उसी के आनंद में मग्न है । गुरु-कृपा से बड़ी कठिनाई से मुझे गुड़ रूपी भक्ति की प्राप्ति हुई, साधना रूपी कषाय से मैंने उसमें से राम-रस टपकाया । राम-रस रूपी वारुणी का प्रसार सारे तन में ऊपर से नीचे तक हो गया, फिर भी साधक उससे अघाता नहीं और बार-बार उसे पीने की इच्छा प्रकट करता है । कबीर कहते हैं कि उस रसास्वाद का उद्रेक बहुत प्रिय लगा । उस भक्ति-रस के पान की मस्ती में मैं झूम रहा हूँ ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८८

अर्थ — मतवाला आत्मा राम-रस पीता हुआ और विचार करता हुआ छक गया (अमल में हो गया)। बहुत मूल्यों में और महंगे दामों में [उसके लिए] मैंने गुड़ पाया, और कसाव (कस – मदिरा को कड़ी बनाने के लिए डाली जाने वाली बबूल या बैर की छाल) को लेकर मैंने राम-रस चुवाया । तनु-पट्टन में मैंने उसका प्रसार किया, और मांग कर [मैं] बेचारा वह रस पीने लगा । कबीर कहता है कि मत्तता फब गई, और राम-रस पीते-पीते [मुझे] खुमार लग गई ।

गुड़ ज्ञान का है (दे० ऊपर का पद), "कसाव" या "कस" अन्यत्र पंच विकारों का बताया गया है (रामकली ३.४), मदिरा राम-रस की है, जैसा कि पद में ही दिया गया है ।

J16 - S16#20

जयदेव सिंह, पृ० ३७

शब्दार्थ – दुहाई = गुहार । अघाई = तृप्त ।हर = प्रत्येक । सूर = सूर्य । ससि = चंद्र । जुग = दो (साक्षि-चैतन्य और मन) । दस द्वार = दसो इन्द्रियों के छिद्र (दो आँखें, दो नासा छिद्र, एक मुँह, दो कान, लिंग, गुदा, ब्रह्मरन्ध्र) । तारी = एकाग्रता । गंग = (प्र० अ०) कुण्डलिनी । नीर = अमृत रस, सोमरस । पंच जने = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । नागिनी = सर्पाकार कुण्डलिनी । सुधि = उपदेश । उछकि = उचकना, ऊबना ।

संदर्भ – योग द्वारा समाधि की अवस्था में जो आनन्द प्राप्त होता है, इस पद में उसी का वर्णन किया गया है ।

व्याख्या – कबीर कहते हैं कि हे भाई ! राम की गुहार लगाओ ! राम रस का प्रभाव अद्भुत है । उस रस का पान कर शिव और सनक, सनंदन आदि मस्त हो गए तथापि उसका पान करते हुए अघाते नहीं ।

राम रस की तैयारी के लिए इड़ा-पिंगला की भट्ठी बनाई और उसे ज्ञानाग्नि से प्रज्वलित किया । चन्द्र और सूर्य अर्थात् इड़ा-पिंगला नाड़ियों में प्राण और अपान की गति बंद हो गई । शरीर के दसो छिद्रों से पवन (प्राण) का प्रवाह भी बंद हो गया और समाधि लग गई । चित्त आनन्दविभोर होकर राम रस पीता है । वह इस आनन्द में इतना लीन हो गया है कि किसी अन्य रस की कामना नहीं करता । गंगा का जल उलटा बहने लगा अर्थात् कुण्डलिनी के जागरण से चेतना का प्रवाह ऊर्ध्वमुखी हो गया और ब्रह्मरन्ध्र से अमृतधार टपकने लगी । चित्त के साथ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी उस आनन्द का भोग कर रही हैं और उस अमृत-वारुणी के नशे में मस्त हैं ।
सुप्त सर्पाकार कुण्डलिनी जग गई है और चित्त प्रेम रस का पान कर रहा है । सद्गुरु से उपदेश पाकर जिन्होंने सहज शून्य के आनन्द का अनुभव किया है, वे इस महारस में माते रहते हैं और उससे कभी विलग नहीं होते ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८९

अर्थ – हे भाई, राम की दुहाई (जय-जयकार) बोलो । इस रस में शिव-सनकादि मत्त हैं और [इस रस का पान करते हुए] वे आज भी नहीं अघाते हैं । इड़ा और पिंगला (चंद्र तथा सूर्य नाड़ियों) की मैंने भट्ठी की और उस में मैंने ब्रह्माग्नि प्रज्वलित की: शशधर (चन्द्र नाड़ी के अधिष्ठाता चंद्र) और सूर्य (सूर्य नाड़ी के अधिष्ठता सूर्य) ने दसों द्वार मुद्रित (बंद) कर दिए और योग की दुहरी तालियां लग गईं । मत्त मन राम-रस पीने लगा, उसे दूसरा कुछ न सुहाता था । गंगा में उलट कर पानी बह आया (मन की गति विपरीतकरणी मुद्रा से इंद्रियों की ओर से हट कर ऊर्ध्वमुखी हो गई) और अमृत की धारा चूने लगी । मैंने पाँच जनों (पंचप्राण) को संग में कर लिया और चलते-चलते [मुझे] ख़ुमार लग गई । मैं प्रेम के प्याले पीने लगा और मेरी सोती हुई नागिनी (कुंडलिनी) जाग पड़ी । जिन्होंने सहज-शून्य (सहस्रार) में [उस] रस (राम-रस – दे० ऊपर) को चखा, उन्होंने सद्गुरु (परमात्मा) से शुद्धि (चेतना) प्राप्त की । दास कबीर इसी रस में मत्त है, और वह कभी इससे उछकता (बेनशा होता) नहीं है ।

J15 - S15#19

जयदेव सिंह, पृ० ४६-४७

शब्दार्थ — अवधू = अवधूत । मतिवारा = मतवाला, मस्त । उन्मनि = भागवती चेतना, तुरीयावस्था, सहज । भौ = संसार । सुषमन नारी = सुषुम्ना नाड़ी । चिगाई = बनाई, तैयार की । बलीता = पलीता । पुड = पुट, नासिका पुट (ला० अ०) इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ । काछै = पास, निकट । सुंनि मण्डल = सहस्रार । मंदला = मर्दल वाद्य ।
संदर्भ — इस पद में कबीर ने मदिरा बनाने की प्रक्रिया के रूपक द्वारा ब्रह्मानुभूति की अवस्था का वर्णन किया है
व्याख्या — वह कहते हैं कि हे अवधूत ! मेरा मन राम रस पीकर मस्त हो गया है । वह उन्मनी अवस्था को प्राप्त हो गया है और उसमें मग्न होकर राम रस का पान कर रहा है । उस चैतन्य के प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं ।
अब वह राम रस रूपी मदिरा के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस रस के निर्माण में ज्ञान का गुड और ध्यान का महुआ डाला तथा सांसारिक विषय-वासनाओं की भट्ठी बनाई । इड़ा-पिंगला नाड़ियों में बहने वाले प्राण और अपान को समन्वित करके भट्ठी तैयार की । काम और क्रोध का पलीता लगाकर अग्नि को प्रज्वलित किया । सुषुम्ना नाड़ी सहज में लीन हो गई और साधक छककर इस मदिरा का पान कर रहा है । अब संसार के प्रति उसकी आसक्ति समाप्त हो गई है ।
सहस्रार में मर्दल का अनाहत नाद सुनाई दे रहा है । उसे सुनकर मेरा मन आनन्दित होकर नाच उठा है । गुरु की कृपा से मुझे अमृतरूपी महारस की प्राप्ति हो गई है । सुषुम्ना सहज में लीन हो गई । मुझे "पूर्ण" का साक्षात्कार हो गया, तब आनन्द का अनुभव हुआ और तन का ताप शान्त हो गया । कबीर कहते हैं कि भव-बन्धन समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी ज्योति परम ज्योति में लीन हो गई ।
टिप्पणी — मानव के भीतर एक दिव्य चेतना विद्यमान है, जो "सहज" है – सह जायते इति सहजः । वह जीवन के साथ ही विद्यमान रहती है । किन्तु जीव का उस से सम्पर्क नहीं हो पाता । मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना नाड़ी है जो गुदा के पास स्थित

मूलाधार से मस्तिष्क के ऊपर स्थित सहस्रार तक गई है । जब साधना द्वारा प्राण और अपान तुल्य बल हो जाते हैं, तब सुषुम्ना में उदान प्राण का जागरण होता है और सुषुम्ना का राजपथ खुल जाता है । कुण्डलिनी उत्थित होकर इसी राजपथ से सहस्रार तक पहुँच जाती है । यही जीव और शिव का मिलन है । जब कुण्डलिनी का जागरण होता है, तब भीतर ही भीतर अनाहत नाद सुनाई देने लगता है, जिसे सुनकर चित्त आनन्द में मग्न हो जाता है । जब जैव-चित्त का परमात्म-चित्त में लय हो जाता है, तब एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है तथा विषय-वासना और संसार के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है । यह मन "उन-मन" में अर्थात् भागवती चेतना में डूब जाता है और अपना पृथक अस्तित्व खो देता है । यही खोकर पाना है । कबीर ने मदिरा के रूपक द्वारा इसी साधना का उल्लेख किया है ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८७-१८८

अर्थ — ऐ अवधूत, मेरा मन मतवाला है, वह उन्मनी गति (मन की ऊर्ध्व गति) में चढ़ा हुआ मग्न (तल्लीन) होकर रस पीता है, [इसलिए उसके लिए] त्रिभुवन में प्रकाश हो गया है । उसने ज्ञान को गुड़, ध्यान को महुवा, भव (जन्म-मरण) को भट्ठी का भार (ईंधन) बनाया । सुषुम्णा नाड़ी जब सहज [स्थिति] में समाई हुई होती है, तभी [रस बनता है और] उसे पीने वाला पीता है । [फिर] दोनों पुटों (नासा-पुटों और उनसे होकर प्रवाहित होने वाली नाड़ियों इड़ा तथा पिंगला – दे० गौड़ी ७४) को जोड़ कर भट्ठी चुवाई, तो भारी महारस चुआ । काम और क्रोध को बलीता (जलने वाले लकड़ी के कुन्दे) किया [और उनसे उस भट्ठी में आग लगाई], तो सांसारिकता छूट गई । शून्य मंडल (ब्रह्मरंध्र) में [अनाहत] मर्दल (वाद्य-विशेष) बजा, तो मेरा मन [उसकी ताल पर] नाचने लगा । गुरु की कृपा से मैंने अमृत-फल प्राप्त किया और सहज में ही सुषुम्णा ने [अपना वेष] काछ लिया (सुषुम्णा अपना कार्य करने लगी) । जब पूर्ण (ब्रह्म) मिला, तब सुख उत्पन्न हुआ और शरीर का ताप बुझ गया । कबीर कहता है, मेरा भव-बंधन छूट गया और ज्योति (आत्मा) ज्योति (परमात्मा) में समा गई ।

"गोरख-बानी" में भी एक रूपक इसी प्रकार का है , जो किंचित् भिन्न है (दे० गोरख-बानी, पद २८) ।

Hindu-Muslim

J42 - S42#51

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७९

अर्थ — अरे भाई, दो (द्वैत) कहां है, वह मुझे बताओ; जो तुम दो कहते हो, वह बीच ही में भ्रम का भेद लगाते हो । [मनुष्य-] योनि को उत्पन्न कर उसने उन्हें दो धरतियों (क्षेत्रों) में कर दिया, और भिन्न-भिन्न दीनों (धर्मों) की करनी भी दोनों के बीच में पड़ गई — दोनों को उसने अलग-अलग कर दिया । [दोनों के द्वारा अलग-अलग] राम और रहीम का जप करते-करते उनकी शुद्धि (सुध-बुध) जाती रही, उन्होंने (हिन्दुओं ने) माला और उन्होंने (मुसलमानों ने) तसबीह ली । कबीर कहता है, ऐ भोंदुओ (बुद्धि-हीनो), चेत करो; वह जो बोलने वाला (आत्मा) है, वह न हिन्दू है और न तुर्क ।

J43 - S43#52

जयदेव सिंह, पृ० ४१७-४१८

शब्दार्थ — रहीम (अ०) = दयालु । करीमा (अ०) = कृपालु । केसो = केशव । सति = सत्य । बिसमिल (अ० बिस्मिल्लाह) = ईश्वर । बिसम्भर = विश्वम्भर, प्रभु । काजी (अ० काजी) = न्यायकर्ता । मुलां (अ० मुल्ला) = मस्जिद में अजान देने वाला । पीर (फा०) = धर्मगुरु । पैकंबर (फा० पैगम्बर) = ईशदूत । रोजा (फा० रोज़ः) = व्रत, उपवास । निवाजा = नमाज़ (अ०) । ग्यारसि = एकादशी व्रत । दिज = द्विज, ब्राह्मण । दिवाजा = दीपार्चन, आरती । मसीति (फा०) = मस्जिद । देहुरै = देवालय में । दुहूँठा = दोनों स्थानों पर । खुदाई (फा०) प्रभुता । ठकुराई = प्रभुता, स्वामित्व । तूटी = त्रुटिपूर्ण । रह = राह; मार्ग । कनराई = किनारे, वास्तविक मार्ग से हटकर । अरध उरध = ऊपर-नीचे । राई = राजा । फकीरा (अ० फकीर) = साधु, संत ।

संदर्भ — प्रस्तुत पद में बताया गया है कि ईश्वर एक है । नाम-भेद और बाह्याचार के कारण हिन्दू और मुसलमान प्रभु को अलग-अलग मानते हैं, जो कि एक भ्रान्ति है ।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि हमारे लिए राम और रहीम, केशव और करीम, राम और अल्लाह सभी समान रूप से एक ही सत्य है । कोई बिस्मिल्लाह के स्थान [४२८] पर विश्वम्भर कहता है, किन्तु हैं मूलतः दोनों एक ही । दोनों में कोई अंतर नहीं । मुसलमानों के धर्म में काजी, मुल्ला, पीर, पैगम्बर का प्रयोग है, वे रोजा रखते हैं और पश्चिम की ओर मुँह करके नमाज पढ़ते हैं । हिन्दू लोग पूर्व दिशा की ओर प्रार्थना करते हैं, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, एकादशी का व्रत रखते हैं, गंगा स्नान करते हैं और दीपार्चन करते हैं । मुसलमान मस्जिद में ईश्वर का स्थान मानते हैं और हिन्दू मन्दिर में । किन्तु प्रभु की प्रभुता दोनों स्थानों में है । जहाँ न मस्जिद है, न देवालय, वहाँ किसकी प्रभुता मानी जाएगी ? वस्तुतः उसका स्वामित्व सर्वत्र है । वह सर्वव्यापी है । हिन्दू-मुसलमान दोनों का रास्ता त्रुटिपूर्ण है, भ्रष्ट है और वास्तविक मार्ग से हट गया है । वस्तुतः ऊपर-नीचे, दशों दिशाओं में राम परिव्याप्त हैं । संत कबीर कहते हैं कि हे भाई ! अपनी आत्मा के अनुसार धर्माचरण करो । हिन्दू-मुसलमान दोनों का कर्त्ता एक ही है । उसका मर्म किसी की समझ में नहीं आता ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८०

अर्थ — हमारे [लिए] राम और रहीम, करीम और केशव, अल्लाह और राम वही (एक ही) सत्य है, बिसमिल को मिटा कर विश्वंभर कहना एक ही बात है, दूसरा (भिन्न) कोई नहीं है । इनके [धर्म के अंग] हैं क़ाज़ी, मुल्ला, पीर, पैगंबर, रोज़ा और पश्चिम (मगरिब) की नमाज़; इनके हैं पूर्व दिशा [की संध्या], देवता तथा द्विज-पूजा, एकादशी, गंगा[-स्नान] और दीपार्चन । तुर्क मसजिद में तथा हिन्दू देवालय में [उपासना करते हैं], और दोनों स्थानों में राम की खुदाई (ईशता) [मानी जाती] है, किन्तु जिस स्थान पर मसजिद या देवकुल (देवालय) नहीं है, वहां किसकी ठकुराई (ईशता) है ? हिन्दू और तुर्क दोनों की राहें टूटी हुई (त्रुटिपूर्ण), फूटी और कनराई (दरारों के साथ फटी हुई) हैं, किन्तु अधस् में (नीचे) और ऊर्ध्व में (ऊपर) दसों दिशाओं में जहां-तहां रामराय [ही] पूरित हो रहा है । फ़क़ीरों (साधुओं) का दास कबीर कहता है, हे भाई, अपनी (आत्मा की) राह पर चलो, क्योंकि हिन्दू और तुर्क दोनों का कर्त्ता एक ही है और उसकी गति देखी नहीं जाती है ।

Lotus

J46 – S46#58

जयदेव सिंह, पृ० १०४–१०५

शब्दार्थ — नलिनी = कमलिनी (प्र० अ०) जीव । नालि = जड़ (प्र० अ०) सम्पर्क । सरोवर = (प्र० अ०) आत्मिक चेतना का प्रसार । हेतु = प्रेम । उदिक = जल ।

संदर्भ — जीव का मूल अर्थात् आत्म-चैतन्य आनन्दस्वरूप है । जीव उससे सम्पर्क स्थापित न रखकर, बाह्य विषयों में अनुरक्त रहता है । उसके दुःख का यही कारण है ।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू क्यों म्लान है ? सांसारिक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद के द्वन्द्व में पड़ा रहना ही जीव का अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति अनभिज्ञ होना है । इस तथ्य को कमलिनी के प्रतीक द्वारा स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि कमलिनी के नाल का मूल सरोवर में रहता है, जहाँ से उसे सदैव तरलता प्राप्त होती रहती है तथा उसकी उत्पत्ति सरोवर से होती है, उसके जल में ही उसका वास रहता है । न तो उसके तल में ताप है और न ऊपर आग है । फिर उसके कुम्हलाने का क्या कारण हो सकता है ? कवि पूछता है कि इन सारी अनुकूल परिस्थितियों के होते हुए भी तू क्यों मुरझाई हुई है ? तेरा प्रेम किससे हो गया है ? वस्तुतः तेरा स्नेह उस मूल स्रोत से नहीं है जो तेरे जीवन का आधार है । तू किसी अन्य में अनुरक्त है, यही तेरे मुरझाने का कारण हो सकता है ।

जीव का मूल आत्मा है, जो सच्चिदानन्द है । जीव उससे संयुक्त न होकर सांसारिक विषयों में अनुरक्त रहता है । यही उसकी म्लानता का कारण है । जिसके मूल में आनन्द का अगाध सागर है, वह तभी म्लान हो सकता है, जब वह उससे सम्पर्क स्थापित न करके,

उससे प्रेरणा न ग्रहण करके बाह्य विषयों में आनन्द खोजता है । कबीर कहते हैं कि जो जीव उस आनन्द रूपी जल के समान है, जो सबको तरल करता रहता है और शान्ति पहुँचाता रहता है तथा जिस जीव ने उससे पूर्ण सम्पर्क स्थापित कर लिया है, वह हमारी समझ से अमर है । उसने अमृतत्व का पान कर लिया है ।

टिप्पणी — उदिक – उदक का तद्भव । यह शब्द "उन्दी" धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है – क्लेदन, भिगो कर रखना । "उदक" से आनन्द की उपमा बहुत व्यञ्जक है । जिस प्रकार उदक अपनी तरलता से सबको शान्त और प्रसन्न रखता है, उसी प्रकार मूल चैतन्य, जो आनन्दस्वरूप है, अपने प्रभाव से सबको शान्ति और आनन्द प्रदान करता रहता है । म्लानता तभी आती है जब हम उससे सम्पर्क न रखकर विषयों में अनुरक्त हो जाते हैं ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८३

अर्थ — ऐ कमलिनी, तू क्यों कुम्हलाई हुई है, जब तेरे ही नाल (निमित्त) सरोवर में जल है ? जल में तेरी उत्पत्ति है, जल में तेरी वास है, जल में ही, ऐ नलिनी, तेरा निवास है; न तेरे तल में ताप है और न तेरे ऊपर आग है, तेरा प्रेम कह किससे लग गया है ? कबीर कहता है कि जो [सरोवर के] जल के समान [सम और शान्त] हैं, वे [ही] मेरे ज्ञान के अनुसार मृत नहीं हुए ।

Riding a horse

J24 - S24#29

जयदेव सिंह, पृ० ३

शब्दार्थ — अपनै = आत्मस्वरूप । पाँवड़ै = रिकाब (अ०), घोड़े का काठी का पायदान जिसमें पाँव रख कर चढ़ते हैं । मुहरा = घोड़े के मुख पर पहनाया जाने वाला साज़ । सिकली = (अ० सिक़्ल) भारी, दृढ़ । ... । ताजनै = (फ़ा० ताज़ियाना) कोड़ा । कतेब = किताब, कुरान । गगन = ब्रह्मरंध्र, शून्य-चक्र । नियारा = न्यारा, पृथक्, भिन्न ।

संदर्भ — प्रस्तुत पद में बताया गया है कि आत्मस्वरूप की जानकारी के द्वारा ही परमतत्त्व को जाना जा सकता है ।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि हे जीव ! यदि तुम परमतत्त्व की प्राप्ति करना चाहते हो तो आत्मतत्त्व को अच्छी तरह समझकर मन रूपी अश्व पर आरूढ़ हो जाओ । जो तत्त्व तुम्हारे भीतर स्वाभाविक रूप में विद्यमान है, उसी के रिकाब में अपना पैर रखो अर्थात् उसी के द्वारा परम तत्त्व की उपलब्धि हो सकती है । मनरूपी अश्व को नियंत्रित करने के लिए उसके मुँह में तोबड़ा लगाकर लगाम पहना दो, जिससे वह विषयों का स्वाद लेने के लिए प्रवृत्त न हो सके । तत्पश्चात् उस पर मज़बूत ज़ीन डालकर उसे ऊपर ब्रह्मरंध्र की ओर दौड़ा दो ।

मनरूपी अश्व को संबोधित करके कबीर कहते हैं कि तू वैकुण्ठ की ओर चल । तेरा उद्धार हो जाएगा । यदि तू बीच में हिचकता है तो प्रेम रूपी कोड़े से मारकर मैं तुझे उस ओर ले चलूँगा । कबीर कहते हैं कि ऐसा सिद्ध असवार वेद-कुरान आदि पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न होता है ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १६०–१६१

अर्थ — अपने विचार पर सवारी तभी की जा सकती है, जब सहज के पायदान में पैर दिए जाएं । [विचार के प्ररोहण को वश में करने के लिए] मैं उसे मुहड़ा (मुखबंध) पहना रहा हूँ और [तदनंतर] उस पर सिकली (सिक़्ल [अ०]– भारी) ज़ीन के साथ उसे गगन (शून्य – ब्रह्मरंध्र) तक दौड़ा रहा हूँ । [ऐ मेरे प्ररोहण,] वैकुण्ठ चल कर तुझे भी ले जाकर मैं तारूंगा, और यदि [इस यात्रा में] तू थकेगा, तो मैं तुझे तर्जन (चाबुक) से मारूंगा । [हरि का] जन (सेवक) कबीर ऐसा ही एक सवार है जो वेद और किताब (क़ुरआन) दोनों से न्यारा है ।

* * * * *

J57 - S58#78

जयदेव सिंह, पृ० २९२–२९३

शब्दार्थ — निआउ = न्याय । खुदाई = ईश्वरीय । सरजी = रची हुई, बनाई हुई । माटी = काया । बिसमिल = (फा० बिस्मिल) = बलि देना । हलाल (अ०) = विधि विहित, जबह किया हुआ । भै = भेव, भेद, जीव से भिन्न । कुकड़ी = कुक्कुटी, मुर्गी । हक़ (अ० हक़) = सत्य, ईश्वर । किस बोलै = क्या बोलकर, किस मुँह से (मुहा०) । उबरहुगे = उद्धार होगा । नापाक (फा०) = अपवित्र । पाक (फा०) = पवित्र, शुद्ध । भिसति (अ० बिहिश्त) = स्वर्ग । छिटकाई = छोड़ दिया । दोजग (फा० दोज़ख) = नरक ।

संदर्भ — इस पद में धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा का विरोध किया गया है । ।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि हे मुल्ला ! तुम ही ईश्वरीय न्याय, सच्चा न्याय कर दो । तुम्हारे इस प्रकार के बाह्याचार से जीव का भ्रम नहीं जा सकता है । तुम ईश्वर द्वारा सृष्ट जीव को लाकर उसकी काया को विनष्ट करते हो, उसका वध करते हो । ऐसे बलिदान से तुम उस ज्योतिस्वरूप आत्मतत्व को नहीं प्राप्त कर सके, जिस विश्वास से तुमने धर्म के नाम पर ताथाकथित विहित बलिदान किया । फिर तुम्हें क्या लाभ हुआ ?

हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मग्रन्थों की दुहाई देकर पशुबलि को विहित और धर्मसम्मत सिद्ध करते हैं, किन्तु वास्तव में वे ग्रन्थों के मर्म को समझ न सके । ग्रन्थ झूठे नहीं हैं, झूठा वह है जो उनके वास्तविक भाव पर विचार नहीं करता । उनका तात्पर्य अपने पशुत्व का वध करता है । लोग इसे न समझकर पशु का वध कर डालते हैं ।

जब तुम यह मानते हो कि सभी शरीरों में एक ही परमात्मा समान रूप से विद्यमान है तो फिर भेद करके, उनको दूसरा समझकर क्यों मारते हो ? तुम ईश्वर के नाम पर मुर्गी और बकरी का वध करते हो । सभी जीव प्रभु को समान रूप से प्रिय हैं । फिर तुम जीव-हिंसा करके किस मुँह से निस्तार पाओगे । तुम समझते हो कि ईश्वर या धर्म के नाम पर वध किया गया पशु पाक (पवित्र) हो जाता है । वस्तुतः तुम्हारा हृदय नापाक (अपवित्र) है । तुम पवित्रता का मर्म ही न समझ सके । कबीर कहते हैं कि तुम्हारे उस आचरण से स्वर्ग छूट गया और तुम्हारा मन नरक में ही रम गया अर्थात् तुम नरक के पात्र बन गये ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८२–१८३

अर्थ — ऐ मुल्ला, तुम खुदाई न्याय कर लो, इस प्रकार से जीव (जी) का भ्रम नहीं जाता है । तुम सजीव [पशु] को उसके देह को विनष्ट करने के लिए लाए, और तुमने उसकी मिट्टी (काया) को बिसमिल (बलि) किया, किन्तु जो ज्योति (नूर) स्वरूप जीव था, वह हाथ न आया, तो कहो तुमने हलाल क्या किया ? वेद और किताब (क़ुरआन) को क्यों झूठा कहते हो ? झूठा वह है जो इनका (इनके वाक्यों का) विचार नहीं करता है । सभी घटों में तू उस एक को ही जब जानता है, फिर क्यों [वध्य जीव को] द्वितीय (अपने से भिन्न) मान कर मारता है ? तू मुर्गी मारता है, बकरी मारता है और 'हक़' (सत्य) 'हक़' (सत्य) करके बोलता (ईश्वर की दुहाई देता) है । जब सभी जीव स्वामी के प्यार हैं, तो तुम किस के ओट से उबर (बच) पाओगे ? तुम्हारा हृदय पवित्र नहीं है, इसलिए तुमने उस पाक (पवित्र) [परमात्मा] को नहीं पहचानता है, उसका खोज तुम नहीं जान पाए । कबीर कहता है, बहिश्त (स्वर्ग) छोड़ कर दोज़ख़ (नर्क) से ही तुम्हारा मन माना हुआ है । (MPG also gives पाठान्तर not copied here.)

J56 – S57#77

जयदेव सिंह, पृ० ७५–७६

शब्दार्थ — बिगूचनि (सं० बिकुंचन) = अड़चन । गूदा = मांस, भेजा । बूँद = वीर्य । बिनसि = विनष्ट ।

संदर्भ — इस पद में बताया गया है कि हिन्दू-मुस्लिम का भेद कृत्रिम है । ईश्वर ने सभी को समान रूप से मानव बनाया है ।

व्याख्या — प्रभु की सृष्टि में मानव ने जो भेद की दीवालें खड़ी की हैं, वह बहुत बड़े असमंजस का विषय है । सभी प्रकार के भेद-भाव कृत्रिम हैं । वेद और कुरान, धर्म और सांसारिकता के भेद भी मानवकृत हैं । नर और नारी का भेद भी केवल शारीरिक है, तात्विक नहीं । सभी प्राणियों के शरीर में रक्त, मल-मूत्र, चर्म और मांस एक समान हैं और सभी मनुष्य एक ही प्रकार के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं । फिर ब्राह्मण और शूद्र का भेद कहाँ से आया ? यह पार्थिव शरीर स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुआ है और जिस मूल नाद और

बिंदु से उसकी उत्पत्ति हुई है, उसी में वह समाविष्ट हो जाता है । शरीर के नष्ट हो जाने पर भेद समाप्त हो जाता है । मरणोपरान्त उस जीव का क्या नाम रखोगे ? ग्रंथों का अध्ययन-मनन करने पर भी लोग जीवन के इस रहस्य को न समझ सके ।
मनुष्य ने केवल मानव में ही भेद नहीं किया है । ब्रह्मा को रजोगुण प्रधान, शिव को तमोगुण प्रधान और विष्णु को सत्वगुण प्रधान माना है । वस्तुतः उनमें भी एक ही ब्रह्म रस रहा है । कबीर कहते हैं कि निसर्गतः न कोई हिन्दू है, न मुसलमान । सभी में एक ही सत्य व्याप्त है – वह है राम । उसी का जप करो ।
टिप्पणी — **नाद-बिंदु** – तंत्रशास्त्र के अनुसार सृष्टि का मूल एक शक्ति है, जिसे 'नाद' कहते हैं । वह शक्ति जब घनीभूत हो जाती है, तब उसे 'बिंदु' कहते हैं । इसी 'नाद-बिंदु' से सारी सृष्टि होती है और इसी 'नाद-बिंदु' में उसका लय भी हो जाता है ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७९–१८०

अर्थ — ऐसा भेद-भाव भारी बिगूचन (वास्तविकता का गोपन) है; वेद, किताब (क़ुरआन), धर्म और जगत् [के आधार पर कल्पित भेद क्या हैं ?] कौन पुरुष है और कौन नारी है ? एक ही बिंदु (शुक्र अथवा सूक्ष्म शरीर), एक ही मल-मूत्र, एक ही चर्म और एक ही गूदा (मांस) [सब में] है, एक ही ज्योति (नूर) से सब उत्पन्न हैं, इसलिए कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र है ? मिट्टी का यह पिंड (शरीर) सहज ही उत्पन्न हुआ और उसमें नाद (सूक्ष्म जीव) और बिंदु (सूक्ष्म शरीर) समाए । विनष्ट हो जाने से (पर) उसका क्या नाम रक्खोगे ? तुमने पढ़ कर और विचार कर भी मर्म न जाना । रजोगुणी ब्रह्मा, तमोगुणी शंकर और सतोगुणी हरि (विष्णु) के रूपों में भी वही [राम] है । कबीर कहता है, एक राम का भजन करो, कोई हिन्दू और कोई तुर्क नहीं है [सभी समान रूप से केवल मनुष्य हैं] ।